|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 2: सांख्ययोग

3/5 (श्लोक 23-47), शनिवार, 01 जून 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/WJVQWoWygNA

कर्त्तव्य कर्म ही सर्वोपरि

श्रीहनुमान चालीसा पाठ, पारम्परिक प्रार्थना तथा दीप प्रज्वलन के उपरान्त द्वितीय अध्याय के तृतीय भाग का विवेचन सत्र आरम्भ हुआ। भगवान की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हमारा ऐसा भाग्योदय हुआ है कि हम गीता जी को पढ़ने, आत्मसात करने, जीवन में लाने, उसके द्वारा प्रकाश फैलाने और अपने जीवन को उपकृत करने में तत्पर हो गए हैं। पूर्वजन्मों के सत्कर्म, पूर्वजों के संस्कार और सन्तों के आशीर्वाद से हम भगवान द्वारा चुने गए विशेष कृपा पात्र हैं। भगवान की सूची में कहीं तो हमारा नाम है।

हमने पिछले सप्ताह देखा कि आदि शङ्कराचार्य महाराज ने दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक से गीता जी का आरम्भ माना है। पिछले सप्ताह इसका विस्तार से चिन्तन किया कि जितने विषय हैं, उनकी मात्रा और स्पर्श ही फँसाने वाला है। विषयों की मात्रा आसक्ति का बड़ा कारण है। जिस प्रकार जलेबी खाने में कोई बुराई नहीं है, परन्तु जलेबी के प्रति आसक्ति तभी उत्पन्न होगी जब हम बार-बार जलेबी की ओर आकर्षित होंगे तथा बार-बार जलेबी खाएँगे, अतः जिसे विषयासक्ति कम करनी हो, उसे आसक्ति का त्याग करना चाहिए।

आसक्ति किसी भी वस्तु, व्यक्ति, स्वाद, शरीर अथवा सम्पत्ति के प्रति हो सकती है। हमें सुन्दर घर चाहिए, पुत्र-पौत्र चाहिए, कार, मोबाइल, अच्छा स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर शरीर चाहिए- ये सभी आसक्ति उत्पन्न करते हैं, अर्थात मैं किन वस्तुओं के बिना नहीं रह सकता, वही मेरी वासना या आसक्ति है। हमें उसका त्याग करना चाहिए।

2.23

नैनं(ञ्) छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं(न्) दहति पावकः।
न चैनं(ङ्) क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥2.23॥

शस्त्र इस (शरीरी) को काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती, जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु (इसको) सुखा नहीं सकती।

विवेचन: **"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय"** की बात कहने के बाद भगवान कहते हैं कि प्रकृति के जिन पाँच तत्त्वों का प्रभाव शरीर पर पड़ता है, उनमें से किसी का भी प्रभाव आत्मतत्त्व पर नहीं पड़ता। हम पुराने वस्त्रों को त्याग कर नए वस्त्र खरीदते हैं तथा कभी-

कभी अधिक पसन्द वाले वस्त्रों को अधिक समय तक अपने पास रख कर उपयोग में लाते हैं। अपने शरीर की भी बहुत देख-भाल करते हैं, बालों को डाई करते हैं, सोने के नकली दाँत लगवाते हैं, चेहरे की झुर्रियाँ मिटाने के लिए अनेक प्रकार के उपाय करते हैं, परन्तु जिस प्रकार हम पुराने वस्त्रों को त्याग कर नए वस्त्र धारण करते हैं, उसी प्रकार एक समय आने पर हमें अपने शरीर को छोड़ना ही पड़ता है।

भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! केवल शरीर ही मरता है, आत्मा को न शस्त्र काट सकता है, न इसे अग्नि जला सकती है, न इसे जल गीला करता है, न ही वायु इसे सुखा सकती है। पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु चार तत्त्वों के प्रभावों का उल्लेख परमात्मा ने किया है। **आकाश तत्त्व में क्रिया नहीं है इसलिए उसका उल्लेख नहीं है।**

2.24

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम्, अक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः(स्) सर्वगतः(स्) स्थाणुः(र्), अचलोऽयं(म्) सनातनः॥2.24॥

यह शरीरी काटा नहीं जा सकता, यह जलाया नहीं जा सकता, (यह) गीला नहीं किया जा सकता और (यह) सुखाया भी नहीं जा सकता। (कारण कि) यह नित्य रहने वाला, सबमें परिपूर्ण, अचल, स्थिर स्वभाव वाला (और) अनादि है।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि आत्मा अच्छेद्य है। ऐसी बात नहीं है कि हम इसे मारना चाहते हैं लेकिन शक्ति कम पड़ती है। हम इसे मार ही नहीं सकते क्योंकि यह सर्वव्यापी, स्थिर और सनातन है। आत्म तत्त्व के विषय में चार बातें भगवान कह रहे हैं। **यह आत्मा नित्य है** अर्थात् हमेशा से है।

पुरातन का अर्थ होता है पुराना। यह हजारों, लाखों वर्ष पुराना हो सकता है। वेद, पुराण कब लिखे गए, ज्ञात नहीं लेकिन फिर भी इनकी एक अवधि तो है परन्तु सनातन सदैव से है और सदैव रहेगा। हिन्दू धर्म सनातन है। ऐसा नहीं है कि इसकी स्थापना किसी ने की बल्कि यह हमेशा से था, हमेशा रहेगा। हमें लगता है कि आत्मा पहली बार कभी बनी होगी, पहली बार इसने शरीर धारण किया होगा परन्तु ऐसा नहीं है। हमारी बुद्धि जड़ तत्त्व है और आत्मा चेतन तत्त्व है। हम जड़ तत्त्व से चेतन तत्त्व को नहीं समझ सकते।

2.25

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम्, अविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं(वँ) विदित्वैनं(न्), नानुशोचितुमर्हसि॥2.25॥

यह देही प्रत्यक्ष नहीं दीखता, यह चिन्तन का विषय नहीं है (और) यह निर्विकार कहा जाता है। अतः इस देही को ऐसा जानकर शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन: आत्म तत्त्व की दूसरी विशेषता है- अव्यक्त होना, आत्मा अव्यक्त है। इसे किसी भी वर्णन, किसी उदाहरण या उपमा से व्यक्त नहीं किया जा सकता। जो अव्यक्त है, वह अचिन्त्य भी है। उसका चिन्तन या कल्पना नहीं की जा सकती। हम शरीर की विस्तृत व्याख्या कर सकते हैं, जैसे इसमें कितनी अस्थियाँ हैं, कितनी माँसपेशियाँ हैं, कितना रक्त है या कितनी रक्त वाहिनियाँ हैं, लेकिन आत्मा की व्याख्या नहीं कर सकते।

जैसे पङ्खा चलता है- यह चेतन तत्त्व है, लेकिन विद्युत जड़ तत्त्व है। पङ्खे की व्याख्या करना आसान है किन्तु विद्युत की व्याख्या नहीं की जा सकती है।

आत्मा अचिन्त्य और अविकारी है। इसका चिन्तन नहीं किया जा सकता। इसका विकार नहीं हो सकता, जैसे दूध का विकार दही है पर आत्मा अविकारी है। यह वैसी ही रहती है इसलिए तुम्हें इसके लिए शोक करने की आवश्यकता नहीं है।

2.26

अथ चैनं(न्) नित्यजातं(न्), नित्यं(वँ) वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं(म्) महाबाहो, नैवं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.26॥

हे महाबाहो ! अगर (तुम) इस देही को नित्य पैदा होनेवाला अथवा नित्य मरने वाला भी मानो, तो भी तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन: यह भगवद्गीता का सौन्दर्य है कि भगवान अपनी बात पर अड़ते नहीं हैं, जबकि हम हमेशा अपनी बात पर अड़ जाते हैं। आत्मा के विषय में इतना बोलने के पश्चात भी भगवान कहते हैं कि अगर तुम मेरी बात पर विश्वास नहीं करते तो कोई बात नहीं। ठीक है, अगर तुम इसे सदा जन्मने तथा सदा मरने वाला मानते हो, तब भी तुम इसके लिए शोक करने योग्य नहीं हो क्योंकि मरना तो निश्चित है। यहाँ भगवान की दृष्टि आग्रह रहित है। मैं जो कह रहा हूँ, वही सही है ऐसा आग्रह भगवान नहीं करते।

2.27

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु:(र्), ध्रुवं(ञ्) जन्म मृतस्य च।तस्मादपरिहार्येऽर्थे, न त्वं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.27॥

कारण कि पैदा हुए की जरूर मृत्यु होगी और मरे हुए का जरूर जन्म होगा। अतः (इस जन्म-मरण रूप परिवर्तन के प्रवाह का) निवारण नहीं हो सकता।(अतः) इस विषय में तुम्हें शोक नहीं करना ।चाहिये।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि हम यदि जन्म लेंगे तो मृत्यु निश्चित है, तब भी शोक करने योग्य बात नहीं है।

'आए हैं सो जाएँगे, राजा रङ्क फकीर'

Stephen R Covey की पुस्तक है- '**The seven habits of highly Effective people**' इसका हिन्दी अनुवाद है - '**अति प्रभावकारी लोगों की सात आदतें**'**।**

उसमें बड़ी अच्छी बात कही गई है- चिन्तन की परिधि के अन्दर दो घेरे होते हैं- एक वह जिन बातों पर हमारा नियन्त्रण है तथा दूसरा जिन बातों पर हमारा नियन्त्रण नहीं है। **चिन्तन परिधि के भीतर वे क्रियाकलाप होने चाहिए जिन पर हमारा नियन्त्रण है। चिन्तन परिधि के बाहर वे क्रियाकलाप होने चाहिए जिन पर हमारा नियन्त्रण नहीं है।**

जैसे यदि हमारा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है तो हम उसका उपचार करेंगे, परन्तु कल वर्षा होगी या नहीं, लाइट चली गई है तो कब आएगी आदि। इनकी चिन्ता करने से भी कुछ राहत नहीं मिल सकती**।** हम अपना पड़ोसी नहीं बदल सकते, बेटा नहीं बदल सकते, पुत्रवधू नहीं बदल सकते, माता-पिता नहीं बदल सकते। जो हैं, जैसे हैं, वही स्वीकार करना होगा।

भगवान ने मृत्यु को अपरिहार्य कहा है। पदार्थ का जन्म होगा तो मृत्यु भी होगी। जड़ पदार्थ अपरा प्रकृति के अङ्ग हैं। शरीरधारी परा और अपरा का मिश्रण हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र सबकी आयु निर्धारित है। सबका अन्त निश्चित है।

इस सन्दर्भ में कबीरदास जी का बहुत सुन्दर भजन है -

साधो ये मुरदों का गाँव!

पीर मरे, पैगम्बर मरिहैं,
मरिहैं ज़िन्दा जोगी,
राजा मरिहैं, परजा मरिहैं,
मरिहैं बैद और रोगी।
साधो ये मुरदों का गाँव!

चंदा मरिहै, सूरज मरिहै,
मरिहैं धरणी आकासा,
चौदह भुवन के चौधरी मरिहैं
इन्हूँ की का आसा।
साधो ये मुरदों का गाँव!

आत्मा एकल तत्त्व है, वही रहेगा बाकी सब मरेंगे, अर्थात सबका अन्त निश्चित है।

चार्वाक ऋषि का सिद्धान्त था, '**यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा, घृतं पिबेत्**' (जब तक जियो, सुख से जियो, उधार लो और घी पियो)।

2.28

अव्यक्तादीनि भूतानि, व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव, तत्र का परिदेवना॥2.28॥

हे भारत ! सभी प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे (और) मरने के बाद अप्रकट हो जायँगे, केवल बीच में ही प्रकट दीखते हैं। (अतः) इसमें शोक करने की बात ही क्या है?

विवेचन: भगवान कहते हैं कि आत्म तत्त्व पहले भी अव्यक्त था, मृत्यु के बाद भी अव्यक्त होगा। कुछ दिन के शरीर के लिए व्यर्थ चिन्ता करते हो। आत्म तत्त्व का मूल स्वभाव शरीर धारण करना नहीं है। न तो पहले शरीर था, न बाद में शरीर है, केवल बीच की कुछ अवधि में शरीर है। फिर अपने कर्मों के अनुसार शरीर मिलता है। इसके लिए किसी भी तरह की चिन्ता क्यों?

भगवान कहते हैं कि हमारी स्मृति साठ-सत्तर वर्ष की होती है, वही स्मरण रहता है परन्तु आत्मा तो करोड़ों वर्षों की है, जो साधारण बात नहीं है। इसलिए हमें व्यर्थ चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

2.29

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्,
आश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः(श्) शृणोति,
श्रुत्वाप्येनं(व्ँ) वेद न चैव कश्चित्॥2.29॥

कोई इस शरीरी को आश्चर्य की तरह देखता (अनुभव करता) है और वैसे ही दूसरा (कोई) (इसका) आश्चर्य की तरह वर्णन करता है तथा अन्य (कोई) इसको आश्चर्य की तरह सुनता है और इसको सुनकर भी कोई नहीं जानता।अर्थात यह दुर्विज्ञेय है।

विवेचन: भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! आत्म तत्त्व इतना गहन है कि कोई विरले महापुरुष ही इसे समझ सकते हैं, सबको समझ में नहीं आता। कोई महापुरुष इस आत्म तत्त्व को आश्चर्य से देखता है, कोई आश्चर्य से सुनता है तो किसी को सुन कर भी समझ नहीं आता है। वे तो शरीर के जन्म-मृत्यु को ही आत्मतत्त्व मान लेते हैं। कोई विरला महापुरुष ही इसका वर्णन कर सकता है।

2.30

देही नित्यमवध्योऽयं(न्), देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि, न त्वं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.30॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! सबके देह में यह देही नित्य ही अवध्य है। इसलिये सम्पूर्ण प्राणियों के लिये अर्थात् किसी भी प्राणी के लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन: भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! यह आत्मा सभी के शरीरों में सदा ही अवध्य है। इस कारण भी शोक करने योग्य नहीं है।

यहाँ साङ्ख्ययोग पूर्ण हो गया। आगे भगवान कर्त्तव्य कर्म के विषय में बात करते हैं।

2.31

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य, न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्, क्षत्रियस्य न विद्यते॥2.31॥

और अपने क्षात्रधर्म को देखकर भी (तुम्हें) विकम्पित अर्थात् कर्तव्य-कर्म से विचलित नहीं होना चाहिये क्योंकि धर्ममय युद्ध से बढ़कर क्षत्रिय के लिये दूसरा कोई कल्याणकारक कर्म नहीं है।

विवेचन: श्लोक इकत्तीस से सैंतालीस में भगवान कर्त्तव्य कर्म की बात कहते हैं।

क्षत्रिय के लिए युद्ध करना कर्त्तव्य है। उदाहरण के लिए अगर तुम अपने राजा की ओर से युद्ध के लिए नियुक्त हो तो भी अपने धर्म को एक तरफ रखकर युद्ध करना ही होगा। अगर राष्ट्रपति जी युद्ध की घोषणा कर दें और कोई भारतीय सैनिक भय से काँपने लगे तो यह गलत होगा। वह उस समय युद्ध से विमुख नहीं हो सकता। शत्रु सेना को मारने से इङ्कार नहीं कर सकता। उसे इसी कार्य के लिए वेतन दिया जाता है। यही उसका कर्त्तव्य है। इसी प्रकार, अर्जुन! तुम्हें भी अपने कर्म से विमुख होना शोभा नहीं देता। तुमने आज तक सहस्रों युद्ध किए हैं, अगर आज भय करोगे तो ठीक नहीं होगा।

कर्त्तव्य कर्म की अवहेलना करने को किसी तरह से भी उचित नहीं ठहराया जा सकता।

2.32

यदृच्छया चोपपन्नं(म्), स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः(फ्) पार्थ, लभन्ते युद्धमीदृशम्॥2.32॥

अपने-आप प्राप्त हुआ (युद्ध) खुला हुआ स्वर्ग का दरवाजा भी है। हे पृथानन्दन ! (वे) क्षत्रिय बड़े सुखी (भाग्यशाली) हैं (जिनको)

ऐसा युद्ध प्राप्त होता है।

विवेचन: भगवान कहते हैं, अर्जुन! यह युद्ध तुमने आरम्भ नहीं किया है। तुम परिस्थितिवश इस युद्ध क्षेत्र में खड़े हो। क्षत्रिय का धर्म है युद्ध करना। भगवान अर्जुन से कहते हैं कि यदि तुम युद्ध करते हुए मारे गए तो स्वर्ग के द्वार तुम्हारे लिए खुले रहेंगे और यदि विजयी हुए तो राज्य का सुख भोगोगे।

2.33

अथ चेत्त्वमिमं(न्) धर्म्यं(म्), सङ्ग्रामं(न्) न करिष्यसि।
ततः(स्) स्वधर्मं(ङ्) कीर्तिं(ञ्) च, हित्वा पापमवाप्स्यसि॥2.33॥

अब अगर तू यह धर्ममय युद्ध नहीं करेगा, तो अपने धर्म और कीर्ति का त्याग करके पाप को प्राप्त होगा।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि स्वधर्म का अच्छी तरह पालन करने वाले को कीर्ति मिलती है। धर्म का पालन न करने वाले को इस लोक में अपयश मिलता है और कर्त्तव्य पालन न करने पर परलोक में भी पाप के भागीदार बनते हैं। यहाँ भगवान अर्जुन को डाँटते भी हैं। भगवान कहते हैं कि क्या युद्ध से भागना कल्याणकारी होगा? स्वधर्म कीर्ति खोकर पाप को प्राप्त करोगे। इस लोक के लिए कीर्ति और परलोक के लिए स्वधर्म महत्त्वपूर्ण है। माननीय पुरुष के लिए कीर्ति का बहुत महत्त्व है।

2.34

अकीर्तिं(ञ्) चापि भूतानि, कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिः(र्), मरणादतिरिच्यते॥2.34॥

और सब प्राणी भी तेरी सदा रहने वाली अपकीर्ति का कथन अर्थात निंदा करेंगे। (वह) अपकीर्ति सम्मानित मनुष्य के लिये मृत्यु से भी बढ़कर दुःखदायी होती है।

विवेचन: युद्ध के लिए मना करने पर भगवान अर्जुन से कहते हैं कि सब व्यक्ति बहुत काल तक कहेंगे कि अर्जुन युद्ध से भाग गया था। वह तो कायर था। सामान्य व्यक्ति की अपकीर्ति हो जाए तो कोई बात नहीं। महान और यशस्वी पुरुष के लिए अपकीर्ति बहुत दु:खदायी होती है। **जिसकी जितनी अधिक प्रतिष्ठा; उसकी अपकीर्ति उसके लिए उतनी ही अधिक दु:खदायी होती है।**

रावण बहुत विद्वान और पराक्रमी और पुरुषार्थी था। उसने अपने दस शीश शिवजी को बलि चढ़ाकर उन्हें प्रसन्न किया लेकिन अपनी बहू से दुराचरण, सीता जी का अपहरण, भाई का राज्य छीनकर सिंहासन पर अधिकार, ऋषियों की प्रताड़ना जैसे घृणित दुष्कर्म किए, तभी से हजारों वर्षों से उसे जलाया जाता है। उसने पाप एक बार किया पर हजारों वर्षों से भोग रहा है। रावण का नाम अपशब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। माननीय पुरुषों के लिए, अपकीर्ति बहुत कष्टदायी होती है।

2.35

भयाद्रणादुपरतं(म्), मंस्यन्ते त्वां(म्) महारथाः।
येषां(ञ्) च त्वं(म्) बहुमतो, भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥2.35॥

तथा महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध से हटा हुआ मानेंगे। जिनकी (धारणा में) तू बहुमान्य हो चुका है, (उनकी दृष्टि में) (तू)

लघुता को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन: भगवान अर्जुन से कहते हैं कि सम्मानित होकर अब तुम लघुता को प्राप्त करने की बातें करते हो। जो तुम्हारे नाम से काँपते थे, ऐसे छोटे-छोटे योद्धा भी युद्ध से भाग जाने पर तुम्हारा उपहास करेंगे। वे तुम्हें रणछोड़, नपुंसक, कायर आदि नामों से धिक्कार के साथ उच्चारित करेंगे। सब कहेंगे कि पता नहीं सहस्रों युद्ध जीते भी हैं या नहीं, हमारे सामने जब युद्ध पड़ा तो वह कायर की भाँति भाग गया।

2.36

अवाच्यवादांश्च बहून्, वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं(न्), ततो दुःखतरं(न्) नु किम्॥2.36॥

तेरे शत्रुलोग तेरी सामर्थ्य की निन्दा करते हुए बहुत से न कहने योग्य वचन भी कहेंगे। उससे बढ़कर और दुःख की बात क्या होगी?

विवेचन: इतना सुन्दर शब्द 'अवाच्यवादान्श्च' बोलने वाले भगवान के सिवाय कोई और वक्ता हो ही नहीं सकते। भगवान ने अर्जुन को युद्ध न करने के निर्णय पर समझाते हुए बहुत से न कहने योग्य वचन भी कहे। अवाच्य अर्थात न कहने योग्य।

जीवन में एक स्तर के बाद, मनुष्य घर और रोटी के अतिरिक्त जो भी कर्म करता है, वह कीर्ति के लिए करना चाहता है। जीवन में कीर्ति बड़ी सूक्ष्मता से हमारे अन्दर समाई हुई है। वह सोचता है कि यह करूँगा तो कीर्ति होगी, वह करूँगा तो कीर्ति होगी।

भगवान कहते हैं कि निन्दा करने वाले को पाप का भागी बनना पड़ता है।

एक सत्कर्मी राजा का सौतेला भाई सदैव राजा से ईर्ष्या और निन्दा करते हुए अपकार में लगा रहता था। राजा ने एक बार यज्ञ किया। भोजन की तैयारी चल रही थी। उसी समय आकाश में उड़ती एक चील की चोंच में दबा मृत सर्प छूटकर भोजन में गिर गया। विषाक्त भोजन खाकर अनेक ब्राह्मण और सन्त महात्मा परलोक सिधार गए। राजा के सौतेले भाई ने अवसर का लाभ उठाकर, राजा की अपकीर्ति की। इस निन्दा के दु:ख से राजा ने प्राण त्याग दिए। यमलोक में चित्रगुप्त जी ने लेखा-जोखा जाँचकर बताया। यमराज ने सबकी मृत्यु के लिए निन्दा करने वाले को पाप का भागीदार ठहराया। उसने कहा कि मैंने क्या किया। मै तो इस पूरे कर्म में सम्मिलित ही नहीं था। तब यमराज ने कहा कि तुमने अपने भाई की इतनी निन्दा की, कि वह दुःख और क्षोभ से मृत्यु को प्राप्त हुआ। अतः सारा दोष तुम्हें ही लगेगा।

हम अनजाने में ही निन्दारस में पड़कर दूसरों की निन्दा कर बैठते हैं। निन्दा करने से बचना चाहिए। निन्दा के विषय में कुछ बातें ध्यान रखने योग्य हैं:

1. निन्दा सुनने वाले के लिए कवच का कार्य करती है। इसे यदि हम सकारात्मक रूप में ग्रहण करेंगे तो उन्नति करेंगे।

कबीर दास जी कहते हैं-

निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।

अर्थात जो हमारी निन्दा करता है, उसे अपने अधिक से अधिक पास ही रखना चाहिए। वह तो बिना साबुन और पानी के हमारी कमियाँ बता कर हमारे स्वभाव को निर्मल करता है।

2. ग्रन्थों की समालोचना के लिए लेखक ज्ञानी महापुरुषों के पास जाते है ताकि उसमें रह गई कमियों को सुधार सकें।

3. सही कार्य में निन्दा की परवाह भी नहीं करनी चाहिए। प्रधानमन्त्री जी ने नोटों का विमुद्रीकरण किया, धारा 370 हटाने का निर्णय

लिया, तीन तलाक के मामले में निर्णय लिया तो किसी की निन्दा की परवाह नहीं की। देश का हित है, तो करना उचित है।

4. निन्दा और खुजली दोनों के परिणाम घातक हैं, फिर भी मन वहीं लगता है। माननीय पुरुषों के लिए निन्दा मृत्यु से भी बढ़कर है। निन्दा सुनना और करना, दोनों पाप हैं।

5. अपनी निन्दा हो तो दूसरे को दोषी न मानें। अपने कर्म और अपने पाप को ही उसका कारण जानें। उसे सुधारने के लिए, उनका उपकार मानें।

6. दूसरों की निन्दा हो रही हो और बात सही भी हो, तो भी उसमें हस्तक्षेप न करें।

फोर्ड कम्पनी जब बिकने वाली थी तो रतन टाटा उसे खरीदने का प्रस्ताव लेकर कम्पनी के मालिक के पास गए। फोर्ड के मालिक ने ऑटोमोबाइल के क्षेत्र में टाटा की अनुभवहीनता की खिल्ली उड़ाई और बहुत अपमानित किया। टाटा ने उस उपहास का सकारात्मक आश्रय ले कर सबसे सस्ती नैनो कार बनाई। ऑटोमोबाइल (वाहन) क्षेत्र में अपने पाँव जमाकर अपनी धाक जमाई और फिर बीस वर्ष बाद दोबारा जब फोर्ड कम्पनी के बिकने की स्थिति उत्पन्न हुई तो रतन टाटा जी ने ही फोर्ड का अधिग्रहण किया। **निन्दा को सकारात्मकता से लेने का परिणाम हुआ कि टाटा वाहन क्षेत्र में भी अग्रणी कम्पनी बन गई।** निन्दा को हमेशा सकारात्मकता से लेते हुए जीवन में अग्रसर होना ही मनुष्य जीवन का धर्म है।

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,

वह नर नहीं नर, पशु निरा है और मृतक समान है।'

7. निन्दा सुनना और निन्दा करना, दोनों पाप हैं।

8. स्वयं की निन्दा को कर्म और प्रारब्ध मानकर स्वीकार करना चाहिए। निषादराज ने लक्ष्मण से कहा कि कैकेयी ने बहुत गलत कार्य किया है। आप दोनों सुकुमारों को अकारण वनवास दिलवा दिया। तब लक्ष्मण जी ने कहा कि नहीं, इसमें उनका कोई दोष नहीं है, यह सब हमारे प्रारब्ध का ही परिणाम है-

काहू न कोउ सुख-दुःख कर दाता, निज-निज कृत करम भोगु सब भ्राता

अगर लक्ष्मण जी के स्थान पर हम जैसे साधारण व्यक्ति होते तो उसमें और कुछ बातें जोड़कर निन्दा रस का पान करते लेकिन लक्ष्मण जी ने बहुत नम्रता से निन्दा को वहीं रोक दिया।

8.स्वामी, पति/पिता, गुरु की निन्दा को निन्दा न मान कर सुधार का सुझाव मानें।

9. निन्दक के साथ रहने से भी हम दोषी हो जाते हैं।

10. ऐसे कर्म करने से बचें जिनसे हमारी निन्दा हो सकती हो।

2.37

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं(ञ्), जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृतनिश्चयः॥2.37॥

अगर (युद्ध में तू) मारा जायगा (तो) (तुझे) स्वर्ग की प्राप्ति होगी (और) अगर (युद्ध में तू) जीत जायगा (तो) पृथ्वी का राज्य भोगेगा। अतः हे कुन्तीनन्दन! (तू) युद्ध के लिये निश्चय करके खड़ा हो जा।

विवेचन: भगवान अर्जुन से कहते हैं कि तुम्हें राज्य सुख नहीं चाहिए तो भी क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए अगर तुम वीरगति को प्राप्त हुए, तो स्वर्ग मिलेगा। युद्ध जीतने पर राज्य का भोग करोगे। दोनों में ही तुम्हारी हानि नहीं है इसलिए तुम युद्ध का निश्चय करके खड़े हो जाओ।

2.38

सुखदुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व, नैवं(म्) पापमवाप्स्यसि॥2.38॥

जय-पराजय, लाभ-हानि (और) सुख-दुःख को समान करके फिर युद्ध में लग जा। इस प्रकार (युद्ध करने से) (तू) पाप को प्राप्त नहीं होगा।

विवेचन: भगवान छः सूत्र बताते हैं- हे अर्जुन! यदि तुम्हें राज्य सुख की लालसा नहीं है, तो सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय इन छः वृत्तियों में समता को धारण करो। इससे तुम्हें पाप नहीं लगेगा और तुम पापमुक्त हो जाओगे।

2.39

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये, बुद्धिर्योगे त्विमां(म्) शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ, कर्मबन्धं(म्) प्रहास्यसि॥2.39॥

हे पार्थ! यह समबुद्धि तेरे लिए (पहले) सांख्ययोग में कही गयी और (अब तू) इसको कर्मयोग के विषय में सुन; जिस समबुद्धि से युक्त हुआ (तू) कर्मबन्धन का त्याग कर देगा.

विवेचन: श्लोक उन्तालीस से भगवान महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं और कर्मयोग का वर्णन आरम्भ करते हैं।

हे अर्जुन! यह बुद्धि तुम्हें ज्ञानयोग के लिए जैसी कही गई है, वैसी बुद्धि अब कर्मयोग के लिए सुनो। इस बुद्धि में लगा हुआ, तू कर्म बन्धन को त्याग देगा।

2.40

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्॥2.40॥

मनुष्यलोक में इस समबुद्धि रूप धर्म के आरम्भ का नाश नहीं होता (तथा इसके अनुष्ठान का) उलटा फल (भी) नहीं होता (और इसका) थोड़ा सा भी (अनुष्ठान) (जन्म-मरण रूप) महान भय से रक्षा कर लेता है।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि कर्मयोग का पालन करने से जन्म-मृत्यु के चक्र **पुनरपि जननं पुनरपि मरणं** से मुक्त हो जाते हैं। निष्काम कर्मयोग से सब भयों का नाश हो जाता है।

:

2.41

व्यवसायात्मिका बुद्धि:(र्), एकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च, बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥2.41॥

हे कुरुनन्दन! इस (समबुद्धि की प्राप्ति) के विषय में निश्चयवाली बुद्धि एक ही (होती है)। जिनका एक निश्चय नहीं है, ऐसे मनुष्यों की बुद्धियाँ अनन्त और बहुशाखाओं वाली ही (होती हैं)।

विवेचन: भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! इस सम बुद्धि की प्राप्ति के विषय में निश्चय वाली बुद्धि एक ही होती है। अस्थिर विचार वाले विवेकहीन सकाम पुरुषों की बुद्धि अनिश्चयी बहुत शाखाओं वाली होती है, जिसकी सकामता बुद्धि ज्यादा होगी उसका विवेक उतना ही ज्यादा अस्थिर होगा।

परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदास जी महाराज कहा करते थे आदमी जितना बड़ा होगा उतना ही बड़ा भिखारी होता जाएगा। मुझे और चाहिए और चाहिए की भावना उसमें आती चली जाएगी।

आजकल विश लिस्ट की धारणा का प्रचलन है। बच्चा गरीब होगा तो एक पन्ने में ही अपनी माँगों को लिखकर दे देगा कि, मुझे यह चीज़ें चाहिए और जब अमीर बच्चे की विश लिस्ट बनेगी तो वह एक पन्ने में नहीं होगी, अपितु वह तो डायरी ही भर देगा। मनुष्य जितना बड़ा होता जाएगा, उसकी कामनाएँ उतनी ज्यादा बढ़ जाएँगी, बुद्धि अस्थिर हो जाएगी। यदि एक साधारण रिक्शाचालक को दस हजार रुपए मिल जाते हैं तो वह बहुत खुश हो जाएगा। उसकी खुशियों की सीमा नहीं रहेगी, खुशी से भर जाएगा और बड़े व्यक्ति को एक-दो करोड़ भी मिल जाते हैं तो वह सोचेगा इससे क्या होगा, और चाहिए, और होता तो अच्छा रहेगा।

एक बार तपस्या कर रही पार्वती के पास पहुँच कर सप्तऋषि उनकी परीक्षा लेना चाहते हैं। कहते हैं कि छोड़ो शिवजी की तपस्या करना, क्या मिलेगा उनसे? विष्णु जी की तपस्या करो, ब्रह्मा जी की तपस्या करो। इससे बहुत कुछ मिलेगा। शिवजी को तो ढङ्ग से कपड़े पहनने नहीं आते, पार्टी करना नहीं आता, क्या मिलेगा इनसे? ये तो बेकार हैं। कई वर्षों से तपस्या कर रही हो, इससे तो अच्छा है कि कुछ ही वर्षों की तपस्या में बहुत कुछ मिल जाएगा।

सब कुछ सुनकर पार्वती जी कहती हैं:

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥

स्वयं शिवजी भी आकर सौदा करें तो भी मैं गुरु उपदेश को नहीं छोडूँगी और मैं शिवजी को ही वरूँगी, यह निश्चयात्मक गुण है। सकामी भक्तों की भी प्रवृत्ति कुछ ऐसी ही होती है। कभी इस भगवान की पूजा, कभी उस भगवान की पूजा। चलो, यहाँ कुछ नहीं मिला तो वहाँ चलते हैं। कभी मन्दिर गए, कभी जाकर चादर भी चढ़ाने लग जाते हैं। कभी वैष्णो देवी चले गए, कभी चार धाम। बुद्धि स्थिर ही नहीं होती। ये कहीं टिक भी नहीं सकते। सकामी की बुद्धि स्थिर नहीं होती, इधर-उधर भागता रहता है लेकिन जिसकी बुद्धि निष्काम योग में आ गई वह स्थिर होता है।

कर्मयोग में लगे रहने वालों की बुद्धि एक ही होती है। सकाम कर्म करने वालों की अनेक प्रकार की बुद्धि होती है। निष्काम कर्म में कोई गड़बड़ नहीं होती। सकाम कर्म में गड़बड़ होती है।

तीन बातें हैं -

काम के बदले काम।
काम के बदले दाम।
काम के बदले नाम।

हम चाहते हैं कि हमारे काम के बदले कोई हमारा काम करे या फिर काम के बदले हमें धन मिले, या हमारे काम के लिए

हमारी प्रशंसा हो। बनिए के बहीखाते का हिसाब और बैंक में जमा धन का खाता तो चलता रहेगा। जो भी किया उसका फल मिलेगा अवश्य, भले कभी भी मिले। चित्रगुप्त का खाता कभी बन्द नहीं होता।

धर्म का छोटा सा कार्य भविष्य में महान सङ्कटों से बचा लेता है। किसी से कुछ लिया है तो देना तो पड़ेगा। सेवा के बदले सेवा दे सकते हैं। लर्नगीता में गीता सेवी बनकर, सेवा करके, अपने ऋणों से मुक्त हो सकते हैं।

2.42, 2.43, 2.44

यामिमां(म्) पुष्पितां(वँ) वाचं(म्), प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः(फ्) पार्थ, नान्यदस्तीति वादिनः॥2.42॥

कामात्मानः(स्) स्वर्गपरा, जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां(म्), भोगैश्वर्यगतिं(म्) प्रति॥2.43॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां(न्), तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः(स्), समाधौ न विधीयते॥2.44॥

हे पृथानन्दन ! जो कामनाओं में तन्मय हो रहे हैं, स्वर्ग को ही श्रेष्ठ मानने वाले हैं, वेदों में कहे हुए सकाम कर्मों में प्रीति रखने वाले हैं, (भोगों के सिवाय) और कुछ है ही नहीं - ऐसा कहने वाले हैं, (वे) अविवेकी मनुष्य इस प्रकार की जिस पुष्पित (दिखाऊ शोभायुक्त) वाणी को कहा करते हैं, (जो कि) जन्मरूपी कर्मफल को देने वाली है (तथा) भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये बहुत सी क्रियाओं का वर्णन करने वाली है।
हे पृथानन्दन ! जो कामनाओं में तन्मय हो रहे हैं, स्वर्ग को ही श्रेष्ठ मानने वाले हैं, वेदों में कहे हुए सकाम कर्मों में प्रीति रखने वाले हैं, (भोगों के सिवाय) और कुछ है ही नहीं - ऐसा कहने वाले हैं, (वे) अविवेकी मनुष्य इस प्रकार की जिस पुष्पित (दिखाऊ शोभायुक्त) वाणी को कहा करते हैं, (जो कि) जन्मरूपी कर्मफल को देने वाली है (तथा) भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये बहुत सी क्रियाओं का वर्णन करने वाली है।
उस पुष्पित वाणी से जिसका अन्तःकरण हर लिया गया है अर्थात् भोगों की तरफ खिंच गया है (और जो) भोग तथा ऐश्वर्य में अत्यन्त आसक्त हैं, (उन मनुष्यों की) परमात्मा में निश्चय वाली बुद्धि नहीं होती।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! जो भोग में लगे हुए हैं, जो कामनाओं में लगे हुए हैं, जो कर्म फल के प्रशंसक वेद वाक्य में निष्ठा रखते हैं, जिनकी बुद्धि में परम प्रिय वस्तुओं की प्राप्ति की लालसा होती है, इससे बढ़िया और कोई नहीं, ऐसा कहने वाले अविवेकी बुद्धि के होते हैं। जो दिखाऊ, शोभायुक्त वाणी को कहा करते हैं, जो भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए बहुत सी क्रियाओं का वर्णन करने वाले हैं, जिनकी बुद्धि हर ली गई है, ऐसे मनुष्य परमात्मा में एक निश्चयवाली बुद्धि नहीं रखते।

भगवान कह रहे हैं, हम सबके लिए कह रहे हैं। हम सभी को भगवान चाहिए इसलिए तो हम सभी बैठकर गीता पढ़ रहे हैं। हमारी एक गड़बड़ यह है कि हमें भगवान भी चाहिए और हमें संसार भी चाहिए। पैसा भी बहुत सारा मिले, भोग मिले, पत्नी-पुत्र आदि सब कुछ मिले। हम चाहते हैं कि एक पैकेज के द्वारा सब कुछ मिले लेकिन भगवान कहते हैं, यह नहीं हो सकता। जिसकी बुद्धि भोग में प्रवृत्त हो गई, उसकी बुद्धि भगवान में नहीं लगेगी, यह निश्चित है। जो भोग के लिए भाग रहा है, जो स्वर्ग की प्राप्ति के लिए भाग रहा है, वह परमात्मा की प्राप्ति में स्थित रहे, यह नहीं हो सकता, यह सिद्धान्त है इसलिए भगवान की प्राप्ति में लगने के लिए, भोगों को छोड़ना पड़ेगा, पुण्य कर्म करके मैं स्वर्ग की प्राप्ति करूँगा, इसको भी छोड़ना पड़ेगा। भोगों में आसक्ति रखने वाले, वेदों के सकाम कर्म में बुद्धि लगाने वाले, स्वर्ग के सुखों को सर्वोपरि समझने वाले अविवेकी जन हैं। जिनकी वृत्ति भोगों, ऐश्वर्यों, कामनाओं में लग गई, वे सिर्फ ऐसा ही करते रहते हैं।

कोई पूछेगा, गीता पढ़ने से क्या मिलेगा? कुछ धन-लाभ होगा क्या? कई लोगों का ऐसा मानना भी होता है कि अगर किसी तरह का धन लाभ नहीं है तो इसे हम बाद में वृद्धावस्था में करेंगे क्योंकि अभी हम जहाँ सेवा करते हैं, वहाँ से कारोबार में दस लाख का लाभ हुआ है।

सकाम बुद्धि वाले को परमात्मा विषयक बात अच्छी नहीं लगती।जिसकी बुद्धि परमात्मा में लगती है, उसकी सकाम वृत्ति धीरे-धीरे घटने लगती है। आवश्यकता होने पर परमात्मा से माँगना बुरा नहीं है, सामयिक देवताओं का उपयोग तो हमें करना ही चाहिए। केवल माँगने के लिए परमात्मा को याद करना, ऐसी सकाम वृत्ति में नहीं लगे रहना है, बस इसका ध्यान अवश्य रखना है।

2.45

त्रैगुण्यविषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो, निर्योगक्षेम आत्मवान्॥2.45॥

वेद तीनों गुणों के कार्य का ही वर्णन करने वाले हैं; हे अर्जुन! (तू) तीनों गुणों से रहित हो जा, राग द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित (हो जा), (निरन्तर) नित्य वस्तु परमात्मा में स्थित (हो जा), योगक्षेम की चाहना भी मत रख (और) परमात्मपरायण (हो जा)।

विवेचन: भगवान कहते हैं, अर्जुन उपर्युक्त तीनों गुणों का भोग करने वाले, उसका साधन करने वाले जो गुण हैं, उनसे रहित हो जा।

यहाँ भगवान चार बातें बताते हैं- मुझे सोना बहुत अच्छा लगता है, मुझे खाना बहुत अच्छा लगता है, मुझे लोग बहुत अच्छे लगते हैं, इन प्रवृत्तियों से तुम बचो। सुख-दु:ख, लाभ-हानि, मान-अपमान, जय-पराजय यह जितने भी द्वन्द्व हैं, इनमें तुम समरसता से रहना सीखो। नित्य ही परमात्मा में तुम्हारा मन लगे। जो अप्राप्य है उसकी प्राप्ति और उस प्राप्ति की रक्षा, इससे निर्लिप्त हो जाओ।

2.46

यावानर्थ उदपाने, सर्वतः(स्) सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु, ब्राह्मणस्य विजानतः॥2.46॥

सब तरफ से परिपूर्ण महान जलाशय के (प्राप्त होने पर) छोटे गड्ढों में भरे जल में (मनुष्य का) जितना प्रयोजन (रहता है) अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता, (वेदों और शास्त्रों को) तत्त्व से जानने वाले ब्रह्मज्ञानी का सम्पूर्ण वेदों में उतना (ही प्रयोजन रहता है) अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता।

विवेचन: भगवान कहते हैं, सम्पूर्ण रूप से परिपूर्ण, महान जलाशय के प्राप्त होने पर छोटे गड्ढे में भरे पानी से मनुष्य का प्रयोजन नहीं रह जाता। हम जानते हैं जब सबमर्सिबल मोटर नहीं थी, बड़ी-बड़ी टङ्कियाँ नहीं थीं तब पानी के लिए हम बहुत जागरूक रहा करते थे। उसको जमा करके रखना पड़ता था, लेकिन जब सबमर्सिबल पम्प आ गया, घर में बड़ी टङ्की लग गई तो हमें पानी की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। पानी को इकट्ठा कर के रखने की आवश्यकता नहीं होती। जो लोग किसी नदी के किनारे रहते हैं, उन्हें भी पानी जमा करके रखने की आवश्यकता नहीं होती।

भगवान कहते हैं कि चारों ओर से परिपूर्ण बड़ा जलाशय मिल गया तो छोटे जलाशय का मनुष्य को क्या प्रयोजन रह जाता है? इसी तरह ब्रह्म को जो तत्त्व से जान गया, उसका सारे भोगों में, सारे वेदों में, सारे सकाम कर्मों में, उतना ही प्रयोजन रह जाता है। जिसे परमात्मा मिल गए, इन भोगों का उसका क्या काम। जब बड़े की प्राप्ति हो जाती है तो छोटे छूट जाते हैं। तुम परमात्मा की प्राप्ति में लग जाओ। यह कहकर भगवान गीता का सबसे प्रसिद्ध श्लोक अर्जुन को सुनाते हैं। यह श्लोक गीता का प्राण बन गया, बहुत अधिक प्रसिद्ध हो गया।

2.47

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूः(र्), मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥2.47॥

कर्तव्य-कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, फलों में कभी नहीं। (अतः तू) कर्मफल का हेतु (भी) मत बन (और) तेरी कर्म न करने में (भी) आसक्ति न हो।

विवेचन: गीता के बहुत सारे श्लोकों के चार चरणों में एक चरण को सूक्ति कहा जाता है, अर्थात इस एक चरण में सम्पूर्ण श्लोक का अर्थ गर्भित होता है। कुछ श्लोकों में दो चरण सूक्ति होते हैं।

भगवद्गीता में यह अकेला ऐसा श्लोक है जिसके चारों चरण सूक्ति हैं। चारों चरण अर्थ में परिपूर्ण हैं, जिन्हें दूसरे की आवश्यकता नहीं। प्राय: लोग इसकी बहुत ही गलत व्याख्या करते हैं कि तुम कर्म करते जाओ, फल की इच्छा मत करो, ऐसा भगवान ने नहीं कहा है। भगवान यहाँ अधिकार और कर्त्तव्य की बात कर रहे हैं। यहाँ भगवान कहते हैं, अर्जुन! कर्म करने में तुम्हारा पूरा अधिकार है। तुम जो भी करना चाहते हो उसमें तुम्हारा अधिकार है। समस्त मनुष्य जाति कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है। कोई किसी को कर्म करने से नहीं रोक सकता। फल में कभी कोई तेरा साथी नहीं।

तुम जो चाहे कर सकते हो लेकिन उसके परिणाम को तय नहीं कर सकते। किसान कितनी फसल बोएगा, यह तय कर सकता है लेकिन कितनी फसल होगी, यह तय नहीं कर सकता। विद्यार्थी चाहे जितनी भी पढ़ाई कर ले, कितनी भी मेहनत कर ले, उसके लिए वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है लेकिन परिणाम कैसा निकलेगा, उसे कितने अङ्क मिलेंगे, उस पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं। व्यापारी चाहे कितने भी पुरुषार्थ से व्यापार करें, वे स्वतन्त्र हैं पर लाभ कितना होगा, उस पर उनका कोई नियन्त्रण नहीं। चाहे कितना भी कर्म कर लो, कितना भी पुरुषार्थ कर लो, कर सकते हो लेकिन फल में तुम्हारा अधिकार नहीं इसलिए हे अर्जुन! तू कर्म का हेतु मत बन।

कर्म करो लेकिन फल को दृष्टि में रखते हुए मत करो। हमें कर्त्तव्य बुद्धि से कर्म करना चाहिए। माँ को माँ के कर्त्तव्य करने हैं, पिता अपने कर्त्तव्य करें, मालिक को मालिक का कर्त्तव्य करना है, नौकर को नौकर का कर्त्तव्य करना है, सैनिक को सैनिक का कर्त्तव्य करना है लेकिन मैंने किया, अब उसका फल मुझे मिलना चाहिए, यह नहीं हो सकता।

मैं फल का हेतु ही नहीं बनूँगा तो मैं कर्म क्यों करूँ? ऐसा भी नहीं हो सकता। कर्म न करने में तुम्हारी रुचि न हो, ऐसा भी नहीं हो सकता।

यहाँ भगवान चार बातें कहते हैं- कर्म करना है, फल नहीं चाहना है, अपने या दूसरों को अकारण नहीं मारना है और कर्म किए बिना नहीं रहना है। कर्म करना आवश्यक है। फल की अपेक्षा के बिना करना आवश्यक है। हे अर्जुन! ऐसे जो कर्म करता है वह अपने जीवन में पूर्ण सफल हो जाता है। यह जीवन बिना दु:ख और बिना क्लेश के जी लेता है।

कर्म का फल कब मिलेगा? कोई भी इस विषय में निश्चित नहीं है। तीन प्रकार के कर्म फल होते हैं- **त्वरित, परार्थ और सञ्चित**। एक त्वरित कर्म होता है, कर्म किया, तुरन्त फल मिल गया। एक कर्म होता है जिसका फल कुछ समय के बाद मिलेगा। कुछ कर्मों का फल इस जीवन में मिलता ही नहीं, अगले जन्म में अथवा उसके अगले जन्म में भी मिल सकता है।

इसके साथ ही आज के विवेचन सत्र का समापन, **हरि शरणं, हरि शरणं, हरि शरणं, हरि शरणं** नाम सङ्कीर्तन के साथ हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर:-

प्रश्नकर्ता:- गीता गर्ग दीदी

प्रश्न:- इस जन्म में मेरे गुरु भी हैं, मैं गीता जी के पठन-पाठन में भी लगी हुई हूँ, मुझे लगता है कि इन्हीं के सान्निध्य में मेरा पेट भर जाय और संन्यासियों की तरह मुझे भी भोजन न करना पड़े। क्या ऐसा सम्भव है?

उत्तर:- पेट तो भोजन से ही भरेगा किन्तु पेट भरने के लिये ही भोजन करें, मन भरने के लिये नहीं। हमें संयमित होना चाहिए, इसके लिये एकादशी का उपवास अवश्य करना चाहिए। संयम करने से धीरे-धीरे भोगों में रुचि घटती है।

प्रश्नकर्ता:- अंजलि गुप्ता दीदी

प्रश्न:- मृत्यु के उपरान्त अङ्गदान करना चाहिए या नहीं?

उत्तर:- शास्त्रों में अङ्गदान का वर्णन नहीं है, स्वामी गोविन्ददेव गिरि जी के अनुसार भी अङ्गदान निषिद्ध है किन्तु एकाध अङ्ग जैसे- आँखें आदि के दान में कोई बुराई नहीं है।

प्रश्नकर्ता:- गुणवन्ती दीदी

प्रश्न:- गीता जी में कहा गया है कि जब आयु बढ़ने पर शरीर दुर्बल हो जाता है, तब उसकी मृत्यु हो जाती है किन्तु कई लोग तो पूर्णतया स्वस्थ एवं युवा होने पर भी मृत्यु को प्राप्त करते हैं, कई अन्य लोग मृत्यु शैय्या पर होने पर, वर्षों कष्ट सहन करके भी मृत्यु नहीं प्राप्त करते है। ऐसा क्यों होता है।

उत्तर:- ब्रह्मा जी ने सामान्यत: मनुष्य की आयु सौ वर्ष की बनाई है, सौ वर्ष के लिये अङ्ग काम कर सकें इस तरह के बनाये हैं किन्तु यदि प्रकृति के विपरीत जाकर कोई मदिरापान के द्वारा अपना लिवर ख़राब कर लेता है या समुचित मात्रा में जल न पीकर किडनी ख़राब कर लेता है, समय पर भोजन न करना, समय पर सोना नहीं या दवाइयाँ अधिक खाना, इससे भी स्वस्थ अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। कुछ लोगों की आयु ही पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार कम होती है, अत: उनकी मृत्यु असमय हो जाती है। कुछ लोग प्राणायाम, व्यायाम से अपनी आयु को बढ़ा भी लेते हैं।

प्रश्नकर्ता:- दिनेश भैया

प्रश्न:- गीता जी को कण्ठस्थ क्यों करना चाहिए?
उत्तर:-जब तक गीता जी कण्ठस्थ नहीं होती हैं तो उसे पढ़ने के लिये हमें आँख, कान, हाथ आदि अङ्गो का उपयोग करना पड़ता है, कण्ठस्थ होने के बाद वह हृदय में रहती है, हम कभी भी उसे स्मरण कर पढ़ सकते हैं। आँखें ख़राब हो जायें तो पढ़ना असम्भव होगा। एक बार कण्ठस्थ होने पर कई जन्मों तक इसका प्रभाव रहता है। आज कई छोटे बच्चे भी गीता जी को सुनाते हैं, यह पूर्व जन्म के कर्मों के प्रभाव से ही होता है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||

Sum-Hi-2(3_5)-AG-L4Jul23-010624/4903/v1/240602-1847